जैन धर्म के आदर्शों में निहित पर्यावरण संरक्षण की चेतना

मधु*
प्रो. चन्द्रशेखर**

परिचय

पांचवी-छठी शताब्दी ईसा पूर्व होने वाले परिवर्तनों में प्रमुख परिवर्तन धार्मिक क्रांति का भी माना जाता है क्योंकि इस समय मध्य गंगा के मैदानी इलाकों में विभिन्न धार्मिक संप्रदायों (लगभग 63) का उदय हुआ जिसमें 4 विशेष महत्व रखते हैं। उनमें दो प्रमुख, जैन और बौद्ध परंपरावादी तथा क्रांतिकारी संप्रदाय थे और शेष दो, वैष्णव तथा शैव सुधारवादी आंदोलन थे।[1] जैन और बौद्ध इन दो प्रमुख नास्तिक संप्रदायों का उदय यद्यपि वैदिक धर्म के प्रतिक्रिया स्वरूप माना गया लेकिन इनकी कुछ मूल मान्यताएं, तथा परंपराएं वैदिक धर्म से स्पष्टत: जुड़ी हुई थी। जैसे वैदिक संस्कृति की भांति जैन संस्कृति को भी 'अरण्य संस्कृति' कहा जा सकता है। जैन परंपरा के अनुसार जैन धर्म में 24 तीर्थंकर माने जाते हैं, 22 तीर्थंकरों के बारे में कोई विशेष ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। पहले तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) तथा अंतिम महावीर स्वामी (24वें तीर्थंकर) थे। यद्यपि इन तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता वैदिक काल तक जाती है। ऋग्वेद के केशी सूक्त में ऋषभदेव तथा अरिष्ठनेमी का वर्णन मिलता है। जैन धर्म दर्शन एक जीवन दर्शन है, जो आचार में अहिंसावादी, विचार में अनेकांतवादी, व्यवहार में स्यादवादी और समाज में अपरिग्रहवादी है। जैन धर्म श्रमण (महाव्रतों का पालन करने वाला) संस्कृति की आधारशिला पर आधारित है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य जैन धर्म के मूल है।

धर्म और पर्यावरण के बीच अंतर्संबंधो को वैचारिक आधार 1967 में लिन व्हाइट जूनियर द्वारा लिखे गए लेख *The Historical Root of our Ecological Crisis*[2] द्वारा मिला, जिसमें यह विचार निहित था कि विभिन्न समुदायों में उपस्थित सामाजिक, धार्मिक परंपराएं उन समुदायों का अपने पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण निर्धारित करती हैं तथा मानव एवं प्रकृति के अंतर्संबंधों को भी इसी दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल अनेक रूपों में पर्यावरणीय परिवर्तनों का काल था। दूसरी ओर यज्ञ जैसी वैदिक क्रियाओं के अंतर्गत दूध, दही, लकड़ी, पशु-पक्षियों, मानव आदि को अग्नि की

आहुति चढ़ा दिया जाता था। अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण मनुष्य का समृद्ध जीवन प्रभावित था तथा जीवनोपयोगी वस्तुओं, पशु-पक्षियों, मानवों को धार्मिक विश्वास के नाम पर अग्नि की आहुति दे दिया जाता था। जिसके कारण पर्यावरण असंतुलन तथा सामाजिक, आर्थिक, अध्यात्मिक प्रदूषण पनप रहा था। समाज में फैली इन बुराइयों की तरफ नए धार्मिक आंदोलनों ने विशेष ध्यान दिया तथा ऐसे आदर्श प्रस्तुत किए जिनसे प्रदूषण का समाधान किया जा सके।

अन्य दर्शनों की तुलना में जैन दर्शन पर्यावरण पोषण का उत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करता है क्योंकि अहिंसा तथा संयम जैन दर्शन का आदर्श है जो पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन का भी मूल है। जैन दर्शन जीव की सर्वव्यापकता का तत्त्वमीमांसीय दर्शन है, तत्त्वमीमांसा के साथ-साथ जैन दर्शन का आचार-विचार एवं नीतिशास्त्र भी पर्यावरण संरक्षण का अनुगामी है।[3] सत्य है कि मनुष्य की दानवता हर प्रकार के प्रदूषण को बढ़ाती है जबकि मानवता पर्यावरण संरक्षण पर बल देती है और विभिन्न पर्यावरणीय तत्त्वों में देवत्व की कल्पना उन्हें संवर्धित रखती है। अहिंसा, संयम, क्षमता और करुणा जैसे मानवीय गुणों को अपनाकर पर्यावरण की सुरक्षा की जा सकती है। जैन धर्म में मानवता व देवत्व से युक्त गुणों को ही भिक्षुओं के लिए निर्धारित किया गया है जिसका पालन कर वे पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन में अपना योगदान दे सकें। जैन धर्म में प्रत्येक मानव के लिए व्यवस्था की गयी है कि -

जयं चरे जयं चिट्ठे जये मासे जये सये
जये भूसेज्य भसिज्य एवपावं ण वज्झाई[4]

अर्थात मानव यत्नपूर्वक चले, यत्नपूर्वक ठहरे, यत्नपूर्वक बैठे, यत्नपूर्वक सोए, यत्नपूर्वक भोजन करें और यत्नपूर्वक बोले।[5] ऐसे संयमी जीवन को अपनाकर वह पाप का भागी नहीं बन पाएगा। जैनाचार्य द्वारा मानव के लिए इस प्रकार की व्यवस्था निर्धारित करना यह स्पष्ट करता है कि तत्कालीन समय में पर्यावरण असंतुलन की समस्या से वे भलीभांति परिचित थे। जैन तीर्थंकरों ने प्रत्येक प्राणी की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर पर्यावरण संस्कृति को विकसित किया, संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की वकालत की तथा सृष्टि संतुलन विचार के अंतर्गत जैन धर्म का आदर्श अपने अस्तित्त्व के साथ-साथ दूसरों के अस्तित्त्व को भी स्वीकार करना है। इस प्रकार जैन आचार संहिता के अंतर्गत पशु बलि की कड़ी निंदा की गई तथा जीव-जंतु, वृक्ष-वनस्पतियों के प्रति संबंध को पाप-पुण्य के साथ जोड़कर उनके संरक्षण संबंधी विचार को बढ़ावा दिया गया।

अहिंसा द्वारा पर्यावरण संरक्षण

जैन धर्म का एक प्रमुख आदर्श '**अहिंसा परमो धर्मः**' (*लाटी संहिता 1.1*) है। जीव-जंतुओं की हत्या न करना, हरे-भरे वृक्षों को न काटना, उन्हें नष्ट न करना ये सभी अहिंसात्मक कार्य है। जैन दर्शन केवल कृत्यों में ही नहीं अपितु मनसा (भाव अहिंसा), वाचा (वचन अहिंसा), कर्मणा (द्रव्य अहिंसा) हर दृष्टि से अहिंसा का समर्थक है। जैन दर्शन में पेड़-पौधे, जीव-जंतु पर्यावरण के सभी तत्त्व अहिंसा की परिधि में रखे गए है तथा उन्हें आयुर्वेद की शाखा से जोड़कर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनके संरक्षण के लिए प्रयास किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण का आदर्श जैन दर्शन में केवल एक नारा न होकर एक तत्त्वमीमांसीय दार्शनिक स्थापना है जो ना केवल बाह्य पर्यावरण अपितु अध्यात्मिक पर्यावरण की परिशुद्धि पर भी बल देता है।

जैन साहित्य *आचारांग सूत्र* का कथन है कि 'जिसको तुम मारना चाहते हो वह स्वयं तुम हो, जिसके ऊपर तुम अत्याचार करना चाहते हो, वह स्वयं तुम हो।'[6] अतः दूसरों को कष्ट देना स्वयं को कष्ट देना ही है। जैन धर्म की अहिंसा की परिभाषा में सभी त्रस (पंचेंद्रिय जीव-*स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु* और *श्रोत*) तथा स्थावर (एक स्पर्शन इंद्रिय जीव) जीवों को शामिल किया गया है तथा उनकी सुरक्षा हेतु जैनाचार्य के निर्देश पर्यावरण चेतना से स्पष्ट जुड़े हैं। मुख्यतः सभी आगम ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के जीवों की हिंसा से विरत रहने का सफल उपदेश जैनाचार्य को दिया गया है। अहिंसा भाव के बिना पर्यावरण की सुरक्षा संभव नहीं। प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने में सभी जीव प्रायः मिलजुल कर कार्य करते हैं इसीलिए जीवों पर दया पर्यावरण को सुरक्षित रखने का अपरिहार्य तत्त्व है।

जैन परंपरा के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण के प्रथम संवाहक पुरुष माने जा सकते हैं जिन्होंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति सभी में जीव के अस्तित्त्व की अवधारणा और उनकी रक्षा के लिए अहिंसा की परिधि को आवश्यक बताया। उन्होंने वृक्षारोपण, कृषि तथा जल संरक्षण जैसे कार्यो पर जोर दिया। भगवान ऋषभदेव द्वारा 'सर्वजन सुखाय' के संदर्भ में असि, मसि और कृषि की शिक्षा पर जैन समाज की व्यवस्था की नींव रखी गई और 'परस्परोपग्रहों जीवनाम' (आचार्य उमास्वाति द्वारा तत्त्वार्थ सूत्र में निहित) का उपदेश दिया गया जो पर्यावरण का केंद्रीय भूत सिद्धांत है कहा गया कि प्रत्येक जीव एक दूसरे पर आश्रित है तथा इनका संरक्षण ही पर्यावरण का संरक्षण है।[7] *आवश्यक सूत्र* में अहिंसा को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि किसी भी जीव को तीन योग और तीन कारण से हिंसा नहीं पहुंचानी चाहिए यही

अहिंसा है।[8] इसके अतिरिक्त जैन आगम ग्रंथों में अहिंसा पर गहन विचार करते हुए 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' में कहा गया है कि अनजाने में हुई हिंसा, हिंसा नहीं है। जैन धर्म में अहिंसा व्रत का पालन सम्यक प्रकार से करने हेतु कुछ व्रत अत्यंत उपयोगी माने गए है जो इस प्रकार है[9]–

1. ईर्या समिति = चलते समय कोई हिंसा ना हो इस बात का विशेष ध्यान रखना।
2. भाषा समिति = बोलते समय कोई हिंसा ना हो इस बात का ध्यान रखना।
3. एषणा समिति = दीक्षा ग्रहण करते समय किसी प्राणी की हिंसा न हो।
4. आदान निक्षेपण समिति = धार्मिक कर्तव्य का पालन करते समय जिन वस्तुओं को अपने पास रखना आवश्यक है उनमें देखना की कोई हिंसा न हो।
5. व्युत्सर्ग समिति = मल त्याग करते समय यह ध्यान रखना कि जिस स्थान पर वे यह कार्य कर रहे हैं वहां कोई जीव–जंतु तो नहीं है।

आचारांग सूत्र का कथन है –**'सत्वे प्राणा सत्वे भूया, सत्वे जीवा सत्वे सत्ता ण हतंव्वा'** अर्थात कोई भी प्राणी, कोई भी जीव–जंतु, कोई भी प्राणवान नहीं मारा जाना चाहिए क्योंकि इनको नष्ट करने से सभी प्रकार के कष्टों में वृद्धि होती है। इस प्रकार अहिंसा की विचारधारा इस बात का समर्थन करती है कि छोटे से छोटे जीव की भी अनावश्यक हत्या न की जाए, परंतु अणुव्रत कुछ कदम ओर आगे बढ़कर समाज रचना और पर्यावरण के लिए भी अहिंसा को आवश्यक मानता है।[10] *भगवती सूत्र* में वर्णित है कि जब महावीर जी से पूछा गया कि पृथ्वी कायिक आदि जीवों को अक्रांत करने, दबाने, खोदने आदि से उन्हें कैसी पीड़ा होती है[11] तब महावीर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि जैसे कोई तरुण, बलिष्ठ और निपुण व्यक्ति किसी वृद्धावस्था वाले दुर्बल कद वाले व्यक्ति के सिर पर वार करें, तो उससे जो पीड़ा उस वृद्ध व्यक्ति को होती है वैसी ही पीड़ा पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति को छेड़ने या नष्ट करने से होती है।

जैन धर्म द्वारा अहिंसा पर बल देने के कारण ही प्राचीन काल में यज्ञ के समय जो पशु बलि दी जाती थी उसका उन्मूलन संभव हो पाया। संयमी पुरुष हिंसा नहीं करेगा यही जिनशासन कथित मार्ग *आचारांग सूत्र* में वर्णित है। जैन धर्म में दो रूपों में अहिंसा की व्याख्या की गई है प्रथम निषेधात्मक रूप, जिसमें षटकाय जीवों (पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस) की हिंसा न करने का निर्देश तथा द्वितीय विधेयात्मक रूप, जिसमें जीवों पर दया करना तथा अभयदान देने आदि का निर्देश दिया गया है।[12] जैन साहित्य में जैन

राजाओं की युद्ध कला का अहिंसा के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है तथा माना जाता है कि युद्ध में रचनात्मक हिंसा पाप का कारण नहीं है..... यह विरोधी हिंसा है।[13]

पर्यावरण संरक्षण हेतु जैन धर्म के अन्य प्रयास

महावीर स्वामी का आदर्श जो इन्होंने धर्म के माध्यम से विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया-'**मित्ती मे सत्वभुयेसु, वेरं मज्झं ण केणइ**' अर्थात मेरी सब प्राणियों से मित्रता है किसी से बैर नहीं। इस सूत्र को अपनाए बिना संयमी जीवन नहीं जिया जा सकता, धर्म की स्थापना नहीं हो सकती। सब प्राणियों में जीवन के अस्तित्त्व की कल्पना कर महावीर स्वामी ने निर्देश दिया है कि-

सत्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मारिज्जिउं तम्हा पाणिवहं घोरं,
निग्गंथां वज्जयंति णं[14]

सब प्राणी जीने की इच्छा करते हैं कोई मरना नहीं चाहता। इसलिए जैन धर्म जीव हत्या का घोर विरोधी है। जैन धर्म पंचतत्त्वों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) तथा वनस्पति आदि में जीव का अस्तित्त्व स्वीकार करता है तथा एकेंद्रिय जीवों से लेकर पंचेंद्रिय जीवों तक के सामंजस्य को ही उन्होंने पर्यावरण संतुलन के रूप में परिभाषित किया है। आचारांग सूत्र (400 ईसा पूर्व) में महावीर स्वामी का कथन है कि जो पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश तथा वनस्पति के अस्तित्त्व की अवहेलना करता है वह स्वयं अपने अस्तित्त्व की अवहेलना करता है।[15]

- भूमि= जैन धर्म की दृष्टि में भूमि एकेंद्रीय जीव है, चेतना युक्त है, जो सांस लेती है और गंदगी को दूर करती है। भूमि में प्रदूषण फैलने से वनस्पति, पशु-पक्षी तथा संपूर्ण मानव जीवन सभी प्रभावित होते हैं।
- जल= जैनाचार्य का विचार है कि जल का प्रयोग घी के समान किया जाना चाहिए। उनके अनुसार अज्ञात जल स्थान में, दुष्ट प्रवेश वाले जल में, मलिन वस्तुओं से दूषित जल में, वृक्षों से ढके हुए जल में और शैवाल से युक्त जल में स्नान न किया जाए। पानी को छानकर प्रयोग किया जाना चाहिए। छाने जाने के बाद बचे हुए पानी को दूसरे जलाशय में नहीं डाला जाना चाहिए, इसमें जीवो के मरने की संभावना अधिक होती है क्योंकि हर जीवन की प्रकृति अलग-अलग होती है।
- वायु= वायु में वायुकायिक जीवों के अस्तित्त्व को स्वीकार कर जैन मुनियों ने पंखे से भी हवा करने को उचित नहीं माना है।[16] उबासी, डकार, हंसी आदि को भी मुख ढककर लेने का निर्देश दिया गया है।

- अग्नि = उष्मा शक्ति तथा प्रकाश शक्ति का स्त्रोत होने के कारण अग्नि का अस्तित्त्व स्वीकार किया जाता है। जिसे प्राणवायु के बिना जलाया नहीं जा सकता। अत: महावीर स्वामी ने कहा है कि–**'जे लोग अब्भाइक्खई से अत्ताणं अब्भाइक्खई'**[17] अर्थात अग्निकायिक जीवों को पीड़ित करना स्वयं को पीड़ित करना है। अत: *प्रश्नोत्तर सूत्र* (11.119) में जैनाचार्य द्वारा अग्नि जलाने से पहले गृहस्थों को अनेक बार सोचने का निर्देश दिया है क्योंकि अग्नि जलाने से छहकाय के जीवो की हिंसा होती है।

उत्तराध्यायन सूत्र में कहा गया है कि व्यक्ति को मोह, तृष्णा को सांप के केंचुल की तरह उतार कर फेंकना चाहिए इस कथन का पर्यावरणीय महत्व भी है क्योंकि मोह, तृष्णा पर्यावरण का अतिशय दोहन कर जगत के विनाश को बढ़ावा देती हैं। **ममत्तं छिन्दये ताहे, महानागो व्व कंचुयं** (*उत्तराध्यायन सूत्र* 19.86)। जैन ग्रंथ 'भगवती आराधना' में आंतरिक परिग्रह (14 प्रकार) तथा बाह्य परिग्रह (10 प्रकार)[18] का वर्णन किया गया है। इनमें बाह्य परिग्रह पर्यावरण असंतुलन हेतु उत्तरदायी है। पर्यावरण को संतुलित रखने की दृष्टि से जैन दर्शन अपरिग्रह (किसी वस्तु का आवश्यकता से अधिक संग्रह/संचय न करना) पर बल देता है जिसमें स्वार्थवश आवश्यकता से अधिक प्रकृति के किसी तत्त्व या वस्तु का संग्रह उचित नहीं। जैन धर्म में 'कर्मवाद का सिद्धांत' भी पर्यावरणीय चेतना को स्पष्ट करता है। तत्त्वार्थ सूत्र, आवश्यक सूत्र, उपासकदशांग सूत्र आदि अन्य जैन ग्रंथों में 15 व्यवसायों को वर्जित कर्म में माना गया है। ये 15 वर्जित कर्म निम्न है–

सारणी 1: जैन धर्म में वर्णित 15 वर्जित कर्म[19]

अंगार कर्म	कोयला बनाने का व्यवसाय
वन कर्म	जंगल काटने का व्यवसाय
सकत/शकट कर्म	बैलगाड़ी, रथ बनाकर बेचने का व्यवसाय
भटक कर्म	बैल, अश्व, ऊँट को किराए पर चलाने का व्यवसाय
स्फोट कर्म	खान खोदने का व्यवसाय
दरित कर्म	हाथी दांत का व्यवसाय
तक्ष कर्म	लाख का व्यापार करना
रस वाणिज्य	मदिरा आदि मादक पदार्थों का व्यापार
केश वाणिज्य	दास-दासी, भेड़-बकरी, चमरी गाय के क्रय-विक्रय का व्यवसाय
विष वाणिज्य	विष का व्यवसाय
यंत्र पिंड	यंत्र, सांचे, कोल्हू का व्यवसाय
निर्तन्चन/निलांछन कर्म	बैल आदि को नपुंसक बनाने का व्यवसाय
दावाग्नि दान	जंगल में आग लगाना
सरहशोषण	तालाब, झील, जलाशय आदि को सुखाना
असतिपोषण	यभिचार वृति के लिए वेश्याएं नियुक्त करना

अत: उपर्युक्त निषिद्ध कर्मों में पर्यावरण संरक्षण एवं संतुलन की गहन चेतना विद्यमान है जो वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, जंगलों, जीव-जंतुओं के संरक्षण में अत्यंत महत्वपूर्ण है। ज्ञान, कर्म एवं उपासना की त्रिवेणी से आप्लवित साहित्य में कर्म का सीधा संबंध भेषज्य एवं पर्यावरण शुद्धि से माना जाता है। जैन श्रमणाचार (सप्त व्यसन त्यागी और अष्टमूलगुणों का पालन करने वाले श्रावक का आचार) भी पर्यावरण संरक्षण में अत्यधिक सहायक है। जैन धर्म के अंतर्गत व्यक्ति को सप्तव्यसनों (जुआ, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी और परस्त्री सेवन) से दूर रहने का निर्देश दिया गया है जो तत्कालीन पर्यावरण चेतना की स्पष्ट अभिव्यक्ति है क्योंकि इनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संबंध पर्यावरण के दोहन से है।

जैन परंपरा में तीर्थंकरों की प्रतिमा के अंकन से पहले आयगपट्टों पर अष्टमांगलिक चिह्न तथा प्रतीकों का प्राथमिक अंकन यह विचार स्पष्ट करता है कि जैन धर्मावलंबियों द्वारा ये प्रतीक संपूज्य थे। जैन मूर्ति पूजा का विकास भी प्रतीक पूजा से हुआ था। जैन आयगपट्टों पर उत्कीर्ण इन अष्टमांगलिक प्रतीकों की प्राप्ति मथुरा (उत्तर प्रदेश), बड़ौदा (गुजरात), खजुराहो (मध्य प्रदेश), उदयगिरि-खंडगिरि (उड़ीसा) की अनंत गुफा, गणेश गुफा, तथा रानी गुफा आदि विभिन्न स्थलों से होती है। जैन धर्मावलंबी ग्रंथों- *औपपातिक सूत्र 31, रायपसेणिय सूत्त (कणडिका 66),* तथा *आचार दिनकर (2/4-11)* में अष्टमंगलों की सूचियों में समान रूप से जिन आठ मांगलिक चिन्हों का उल्लेख मिलता है वह है - स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंदायावर्त, वर्धमान, भद्रासन, कलश, दर्पण और मत्स्युग्म।[20] यद्यपि आरंभ में इन मांगलिक चिन्हों का अंकन किसी धर्म संप्रदाय अथवा जाति विशेष से संबंधित न होकर सार्वजनिक था तथा ये सर्वसाधारण में लोकप्रिय थे। समय के साथ-साथ जैन, बौद्ध, ब्राह्मण आदि विभिन्न धर्मों ने मांगलिकता और दार्शनिकता के कारण अपनी आवश्यकतानुसार इन प्रतीकों को अपना लिया। अष्टमांगलिक चिन्हों का सामूहिक अंकन जैन कला में मुख्य बन गया। ये प्रतीक ग्रामीण लोक देवताओं, यक्ष और नागों की पूजा के निर्मित इन्हें पवित्र वृक्ष-चैत्यों के नीचे किसी लघुपीठिका पर रखें जाते होंगे[21] और जिन पर भक्तगण फूल-माला आदि पूजा सामग्री चढ़ाकर इनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते होंगे। मांगलिक प्रतीकों की पूजा जैन धर्मावलंबियों की अपने पर्यावरण के प्रति कृतज्ञता को स्पष्ट करती है।

जैन मान्यता के अनुसार निरामक्त और पुरुषार्थमय आत्म नियंत्रित जीवन यापन करना पर्यावरण को सुरक्षित रखने का सर्वोत्तम साधन है। जैनाचार्य द्वारा जैन मंदिरों के

निर्माण हेतु की जाने वाली भूमि परीक्षा तथा उद्यान, जल प्रबंधन की उचित व्यवस्था भी उनकी पर्यावरण चेतना को अभिव्यक्त करती है। मंदिरों की भूमि व्रत (गोल) आकार वाली न हो, चौकोर हो, शुभ आकारवाली हो, पूरब ईशान या उत्तर दिशा में स्थित हो, दरार वाली भूमि न हो.... इन मंदिरों में साधारण मंडप, गर्भालय के साथ-साथ उसके बाएं या दक्षिण तरफ जल का प्रवाह रहता था, जिनालय के पूर्व दिशा में एक विशाल सरोवर होता था उनमें झरोखे, गृहजाली होती थी। समवशरण के निर्माण में भी वृक्ष, वन विधियां, दीघिकायें, बावलिया, सरोवर आदि होते थे।[22]

पर्यावरण को शुद्ध रखने के लिए ही जैन मंदिरों के साथ उद्यान बनाए जाते थे जिनमें लगाए जाने वाले वृक्ष, वनस्पतियों का यदि वास्तु-विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि पर्यावरण का पूरा ध्यान रखा जाता था। जिनसेन ने स्फटिक की प्रतिमाओं को जिन मूर्तियों के रूप में प्रशस्त माना है। *आचार दिनकर* (भाग-2) के अंतर्गत भी लोहे, पाषाण, काष्ठ, मिट्टी, गोबर, कांसा, शीशा और कलाई से प्रतिमाएं न बनाए जाने का निर्देश दिया गया है। पर्यावरणीय दृष्टि से यह कथन अनेक रूपों में सही लगता है।

आधुनिक काल में जैन दादाबड़ी (जैन मंदिरों के पास स्थित वाटिका, उद्यान) आज पर्यावरण संरक्षण की दशा में विशेष भूमिका निभा रहे है। यह लघु उद्यान और वनस्पति उद्यान के रूप में बनाए जाते हैं। इनमें विभिन्न प्रजातियों के फल-फूल, वृक्ष, औषधीय पौधे रोपे जाते हैं जो आज सतत पोषणीय विकास को दशा देने तथा पर्यावरण संरक्षण में विशेष भूमिका निभा रहे हैं। जैन आगम ग्रंथों में आवासीय इकाईयों के रूप में ग्राम, नगर, राजधानी, निगम, *आकर, पल्ली, खंड, कर्वट, द्रोणमुख, पतन, मडमब, सम्वाह, आसम, पुटभेदन, सन्निवेश, घोष* आदि का वर्णन मिलता है जिनकी व्यवस्था उचित पर्यावरणीय परिवेश के अनुसार किए जाने के निर्देश दिए गए हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमि चयन में पूर्व दिशा शुभ मानी जाती हैं क्योंकि पूर्व में सूर्योदय होता है उसकी किरणें जमीन पर सीधे गिरती है, वर्षा का पानी भी पूर्व की ओर उतार होने से सीधा जमीन में ही चला जाता है। *कुंदकुंद (1/50-51)* ने भस्म, गोबर, गाय का स्थान, पीपल-वट आदि उत्तम वृक्षों, अग्नि, मार्ग, जल, तालाब, बावड़ी, नदी के किनारे आदि के पवित्र स्थानों पर मल-मूत्र विसर्जन का निषेध किया है। अणुव्रत (आंशिक अहिंसक) पालन के अंतर्गत चक्की, उखली, चूल्हा, जलकुंभी तथा बुहारी आदि गृहस्थों के कार्य पर्यावरणीय संतुलन में बाधक बताए गए है क्योंकि इनसे जीवों की

हिंसा होती है।

वृक्ष - वनस्पति और पशु - पक्षी पूजा

महावीर स्वामी का सबसे पहला उपदेश *आचारांग सूत्र* में संरक्षित है जिसमें उन्होंने मनुष्य और वनस्पति में अनेक आधारों पर समानता दिखाई है। **से बेमि - इमं पि जातिधम्मयं, एयं पि जातिधम्मयं** अर्थात मनुष्य भी जन्म लेता है और वनस्पति भी जन्म लेती है। वनस्पति हिंसा, प्राणी हिंसा के समान है क्योंकि मनुष्य भी कटा हुआ उदास होता है तथा वनस्पति भी कटने पर सूख जाती है। मनुष्य भी नाशवान है और वनस्पति भी नाशवान है।[23] इस प्रकार जैन आगम में वनस्पतियों में जीवन होने के प्रमाण (आधुनिक काल में वैज्ञानिक खोज के अनुसार 'जगदीश चंद्र बसु' ने भी वृक्ष- वनस्पतियों में जीवन की पुष्टि की है) समाहित कर उनको संरक्षित रखने पर बल दिया गया है। जैन आगम ग्रंथों में वृक्ष-वनस्पतियों की विविध श्रेणियों की चर्चा की गई है तथा इनके औषधीय महत्व एवं भक्ष्य-अभक्ष्य में भेद कर उनके संरक्षण के लिए भी विशेष कार्य किए गए हैं। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) के संबंध में मान्यता है कि उन्होंने बरगद (न्यूग्रोध वृक्ष) के नीचे ज्ञान प्राप्त किया था।[24] अत: यह जैन धर्म में पवित्र वृक्ष है। जैन धर्म के दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ को पौष (दिसंबर-जनवरी) में पीपल वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्ति हुई थी। उदयगिरी (उड़ीसा) की गुफा संख्या 5 (जय-विजय गुफा) में एक पवित्र वृक्ष का दृश्य है जिसका समीकरण पीपल से किया जाता है जिसके चारों ओर बाड बनाई गई है तथा एक जोड़े द्वारा इस पेड़ की पूजा की जा रही है।[25] वृक्ष पूजा का अन्य दृश्य खंडगिरि (उड़ीसा) की अनंत गुफा संख्या तीन में चित्रित है जिसमें एक जोड़ा तथा दो अन्य व्यक्ति बाड युक्त पीपल वृक्ष की पूजा करते हुए चित्रित किए गए हैं।

जैन परंपरा में नव निधियों का वर्णन मिलता है तथा एक आदर्श राजा के पास इन निधियों का होना उसकी विशिष्ट स्थिति का सूचक माना जाता है। सारी निधियां प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण को संतुलित और विशुद्ध बनाए रखने में विशेष महत्व रखती है। जिनमें कालनिधि अर्थात वृक्ष, गुल्म, लता, वनस्पति, फल-फूल आदि प्राकृतिक संपदा[26] का पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में विशेष महत्व है। *चंद्रप्रभचरित (2.1-2)* से ही जानकारी मिलती है कि जैन धर्म को अपनाने वाले शासकों ने वनपाल नामक अधिकारी अपने अधीन साम्राज्य में वनों की सुरक्षा हेतु नियुक्त किया था, उनके पीछे जैन शासकों की अपने पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने की चेतना स्पष्ट निहित है। *सूत्रकृतांग* (चौथी-तीसरी सदी ईसा पूर्व) में पेड़-पौधों तथा वनस्पतियों की ऐसी प्रजातियां लगाने तथा उनके

संरक्षण करने के बारे में कहा गया है जो इस पृथ्वी पर दुर्लभ प्रजाति के रूप में है। जैन धर्म अपने अस्तित्त्व काल से ही पर्यावरण के प्रति सजग रहा है जिसकी पुष्टि यह अवधारणा करती है कि जैन धर्म के मान्य 24 तीर्थंकरों के चिन्ह जीव-जंतु, विभिन्न प्रकार के वृक्ष-वनस्पति आदि है। जो जैन तीर्थंकरों की अपने पर्यावरण तथा उसके विभिन्न तत्त्वों के प्रति उनके जुड़ाव को स्पष्ट करता है।

जैन धर्म की धार्मिक परंपराओं में पेड़-पौधों, पशुओं का इतना महत्व था कि प्रत्येक तीर्थंकर का अपना एक पवित्र वृक्ष तथा पशु प्रतीक था। जिनमें 17 तीर्थंकरों के चिन्ह पशु-पक्षी, 3 के वृक्ष व पुष्प तथा चार के चिन्ह शुभंकर हैं जो जल, थल, वायु, में व्याप्त है तथा इनकी शुद्धता के प्रति उत्तरदायी है। यह परिलक्षित करता है कि जैन तीर्थंकरो का पर्यावरण से गहरा लगाव था जो मानव-प्रकृति, विभिन्न पशु-पक्षी तथा पर्यावरण के संतुलित समीकरण को प्रकट करता है जिनमें असंतुलन प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण प्रदूषण का कारण है। पर्यावरणीय तत्त्व सूर्य, चंद्रमा, बृहस्पति तथा जहरीले सरीसर्प, बिच्छू आदि समाज की वृद्धि एवं विकास को इंगित करते हैं।

24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का 'जियो और जीने दो' का प्रभावशाली और चिरस्थायी उद्घोष मानवीय मूल्यों की सुरक्षा तथा संपूर्ण पर्यावरण के अस्तित्त्व का मूल मंत्र है। पशु-पक्षियों के प्रति किए जाने वाले दुर्व्यवहार (अधिक वजन लादना, भूखा-प्यासा रखना, उन्हें मारना-पीटना आदि अन्य तरीकों से उनका शोषण) करने पर जैनाचार्य द्वारा स्पष्ट रूप से अंकुश लगाया गया है। जैनाचार के अंतर्गत गृहस्थ जीवन शैली को लेकर जो नियमावली प्रस्तुत की गई है यदि उस नियमावली को आज सामान्य जन अपना ले तो प्रदूषण की समस्या का बहुत सीमा तक निदान संभव है। जैन मुनियों द्वारा मुख वस्त्रिका का प्रयोग करना, यात्रा में किसी वाहन का प्रयोग न लेकर पैदल यात्रा करना, स्नान में एक घड़े से अधिक पानी का व्यय न करना, वनस्पति- वृक्षों को न काटना, पंचतत्त्व सहित जीवन से संबंधित प्रत्येक पक्ष में जीवन की कल्पना करना, रात्रि भोजन निषेध भले ही आज संप्रदायगत भेद को चिन्हित करने के कारण हास्यास्पद है परंतु वैज्ञानिक पक्ष से यह पर्यावरण संरक्षण तथा मानवीय स्वास्थ्य दोनों के लिए हितकर है।

जैन धर्म में स्वीकृत पंच महाव्रत-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचार्य तथा स्यादवाद, अनेकांतवाद, सप्तभंगनीय सिद्धांत, अहिंसा, सप्त कुव्यसन त्याग, श्रमणाचार, शाकाहार, सह अस्तित्त्व का सिद्धांत, खरकर्म (हिंसक व्यवसाय) निषेध सिद्धांत, जल गलन सिद्धांत (पानी छानकर पीना), अर्थदण्ड विरति व्रत सिद्धांत (बिना

प्रयोजन के किए गए अनर्थ कार्य) आदि जैन सिद्धांत पर्यावरण संरक्षण में अत्यंत उपयोगी भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार जैन धर्म प्रारंभ से ही प्रकृतिवादी और मानवतावादी धर्म है। जैन मतावलंबी अपने आचरण, धर्म साधना, उपासना पद्धतियों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रकृति के संरक्षण, संतुलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। जैन मुनियों द्वारा प्रयोग में लाई गई वस्तुएं *पिच्छी* (साधु जनों द्वारा स्वयं मयूरपंखी से निर्मित), *कमण्डलु* (लकड़ी का पात्र) उनकी स्वयं की पर्यावरण चेतना को भी अभिव्यक्त करता है क्योंकि यह दोनों ही वस्तुएं नष्ट होने पर भूमि में विलीन हो जाती है, किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं फैलाती।

निष्कर्ष

अत: कहा जा सकता है कि जैन धर्म प्राचीनतम धर्म है जिसने पर्यावरण को इतनी गहराई से समझा तथा उसे धर्म और मानवता से जोड़कर उसे संतुलित बनाये रखने का आदर्श प्रस्तुत किया। जैन दर्शन में मानव को पृथ्वी का प्रमुख प्राणी स्वीकार करते हुए मनुष्य के लिए कुछ नैतिक कर्तव्य तथा नैतिक उत्तरदायित्वों का बोध कराया गया है जो पर्यावरण को संतुलित रखने में अहम भूमिका निभाते हैं। जैन आगम ग्रंथ *आचारांग सूत्र, सूत्रकृत्रांग, भगवती सूत्र* आदि इन्हीं आदर्शों तथा पर्यावरण संरक्षण की चेतना से परिपूर्ण ग्रंथ है। जिनमें वनस्पतियों एवं जीवों के साथ उत्तम व्यवहार करने तथा उनके संरक्षण की दिशा में कार्य करने के स्पष्ट निर्देश मिलते हैं।

संदर्भ

1. रामशरण शर्मा, (अनु.), *भारत का प्राचीन इतिहास,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2018, पृ. 125
2. लिन व्हाइट, 'द हिस्टोरिकल रूट ऑफ आवर इकोलॉजिकल क्राइसिस', *साइंस,* वॉल्यूम 155, नं. 3637, मार्च 1967
3. एम. हिरियाना, *एसेंशियल ऑफ इंडियन फिलासफी,* ब्लाकी एंड सन पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, 1978, पृ. 62
4. *दशवैकालिक सूत्र*, 4/8
5. शिव प्रसाद, *जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण,* पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, 2003, पृ. 34
6. *आचारांग सूत्र,* 1/5/5
7. मुनि मणिभद्र, *जैन दर्शन एवं पर्यावरण,* हिग्लाज ऑफसेट प्रिंटर्स, जोधपुर, 2016, पृ. 115-116

8. *आवश्यक सूत्र,* 1/3
9. सोहन राज तातेड़ और विद्याधर सिंह, *प्राचीन भारत का आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक इतिहास,* भाग 1, खंडेवाला पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2015, पृ. 64
10. रामसागर सिंह, *अहिंसा: एक विश्व दर्शन,* लोक वाणी संस्थान, दिल्ली, 2017, पृ. 114
11. *भगवती सूत्र,* 19/3
12. भागचंद जैन भास्कर, *जैन संस्कृति कोष: जैन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना,* द्वितीय खंड, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2002, पृ. 23
13. भागचंद जैन भास्कर, *जैन धर्म और पर्यावरण,* न्यू भारतीय बुक ऑपरेशन, दिल्ली, 2001, पृ. 48
14. *दशवैकालिक सूत्र,* 6/10
15. विक्रम सिंह, *एनवायरनमेंट एंड रिलिजन,* रिसर्च इंडिया प्रेस, न्यू दिल्ली, 2016, पृ. 23
16. *आचारांग सूत्र*, 1/6/49; *मूलाचार*, 5/5, *दसवैकालिक सूत्र*, 4/7
17. *आवश्यक सूत्र,* 9.66
18. ए.के. पाण्डेय, *भारतीय दर्शन में पर्यावरण चेतना,* हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 2011, पृ. 21–22
19. ए.के. पाण्डेय, पूर्वोक्त, पृ. 23–24
20. ए.एल. श्रीवास्तव, *भारतीय कला–संपदा,* उमेश प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001, पृ. 70
21. प्रेमानंद शाह और उमाकांत, *स्टडीज इन जैन आर्ट,* काशी हिंदू विश्वविद्यालय, 1955, पृ. 69
22. भागचंद जैन भास्कर, पूर्वोक्त, 2001, पृ. 91
23. शिव प्रसाद, *जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण,* पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, 2003, पृ. 58
24. बी.सी. भट्टाचार्य, *द तीर्थंकर: जैन आइकोनोग्राफी,* मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 1974, पृ. 35
25. नंदिता कृष्णा और एम. अमृतलिंगम, *सेक्रेड प्लांट ऑफ इंडिया,* पेंगुइन बुक्स,

2014, पृ. 22–23

26. वीरनंदि, *चंद्रप्रभचरित,* भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, *चंद्रप्रभचरित*– 7–29

***शोध अध्येता**

इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा

****प्रोफेसर**

इतिहास विभाग

सर छोटू राम गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वीमन

सांपला, रोहतक (हरियाणा)